क्या इनको भी रेखांकित किया जा सकता है

डॉ॰ ईश्वर पंवार
स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
चां॰ता॰बोरा॰ महाविद्यालय, शिरुर पुणे

गाँव में, शहरों में, जंगलों में, पहाड़ों पर कहाँ-कहाँ लोग हैं। सब लेखक के दायरे में आते तो हैं, पर विविध कल्पना और विविध रंगों से भरकर। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं न तो वे लेखक की कलम में पूर्णत: बैठ पाते हैं और न ही सरकारी योजनाओं के लायक हैं। पता नहीं इस स्वतंत्र देश में ऐसा क्यों होता है? चलो मान लेते हैं कि कभी-कभी ऐसा भी होता है, और शायद होता ही रहेगा। शायद वे लोग इस देश के नक्शे में आते ही न हों, तो फिर क्या उनकी खोज-खबर लें? हाँ, जरूर लेनी चाहिए। हिंदी उपन्यास साहित्य के विशाल पटल पर निश्चित ही कुछ लोग आज भी अदृश्य से हैं। हो सकता है कि उनकी श्रेणी विचार करने के लिए किसी को मजबूर ही न करती हो। यह निश्चित है कि उन पर कुछ-न-कुछ लिखा जरूर गया है, लेकिन बार-बार ऐसा लगता है कि उस रेखांकन में बहुत कुछ छूट गया है। क्या उपन्यासों में चर्चित समूह, जनजाति ही पीड़ित, उत्पीड़ित, प्रताड़ित, उपेक्षित हो सकती है? और अन्य, जो दायरे और चर्चा के बाहर हैं, क्या वे खुशहाल और प्राथमिक सुविधाओं से लबालब हैं? हम अपना मनोरंजन और दिल बहलाने के लिए खेत-खलिहानों को, तो कभी बस्तियों को और कभी आंचलिक प्रदेश को ढूँढ़ लेते हैं। कभी-कभी गाँव के गाँव कारीगर को अपने मनोरंजन का विषय बनाते हैं और बहुत बार यह अपेक्षा भी करते हैं कि गाँव के स्तर पर विविध कला गुणों द्वारा हमारा मनोरंजन करने वाला बहुरूपिया, साँप, नेवले के खेल वाला, पत्थरों के खेल वाला, अपने खुले बदन पर कोड़ों की मार दिखाने वाला, ग्राम देवता का पोतराज पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमारा मनोरंजन करता रहे। वह हमेशा इसी तरह हमारा मनोरंजन करे और हम दातृत्व के भ्रम में गर्वान्वित रहें, ऐसी भी हमारी अपेक्षा होती है। नगरेत्तर जीवन के विश्लेषण में ग्राम, अंचल, कस्बा, आदिवासी तथा घुमंतू लोगों की सामाजिकता, राजनीति, धार्मिकता, आर्थिकता आदि का साहित्य में खूब विश्लेषण हुआ है, लेकिन सच्चाई यह है कि साहित्य और संचार माध्यमों की भाषा सरकारी योजनाओं की समझ के बाहर है। आज भी अल्प घुमंतू, निरंतर घुमंतू, सागर तटीय गाँव, नदी तटीय गाँव, तालाब तटीय गाँव, पहाड़ी तटीय गाँव के अल्प संख्या में जीवन जी रहे लोगों पर हो रहे अत्याचारों में कोई कमी नहीं हुई। संचार माध्यम भूल से कोई एक खबर दिखाते, सुनाते हैं–उन पर हुए अत्याचार की। सरकारी योजनाएँ तो उनसे दूर रहीं, लेकिन अत्याचार उनकी गोद में पल रहे हैं। बार-बार कहा जाता है कि भारत की सबसे अधिक जनता ग्राम में रहनेवाली है इसलिए गांधीजी ने कहा था–'भारत को सच्चे अर्थों में अगर समझना है, तो हमें ग्राम की ओर चलना होगा।' गांधीजी द्वारा किया गया यह विश्लेषण अब कालबाह्य होता स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

सन् 1975 के बाद के कुछ उपन्यासों में पहाड़ी गाँव के किसानों का रेखांकन हुआ है।

 ISSN 0975-735X

पहाड़ी ग्राम अपनी विशेष पहचान रखते हैं। पहाड़ों से घिरे ग्रामों में अभाव का स्पष्ट चित्र दिखाई देता है। इन ग्रामों की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक है। छोटी-सी खेती पर आधारित यह जनजीवन अभाव एवं उपेक्षा में अपने दिन बिताता है। पहाड़ी क्षेत्र में समतल धरती का अभाव होने के कारण पहाड़ों को खोदकर सीढ़ीनुमा खेत बनाए जाते हैं। हिमांशु जोशी लिखित 'सुराज' उपन्यास में सीढ़ीनुमा खेतों का स्पष्ट विवेचन मिलता है–'धोनी धार के जंगल लोहारों ने आबाद की जड़ों में गड्ढे खोदकर खाद डालकर सेब और तुमलिया नाशपाती के पौधे लगाए, ढलवा जमीन को चौरस बनाया सीढ़ीनुमा खेतों में बदला।'[1] यहाँ खेती कम और बंजर भूमि अधिक होती है। जमीन तैयार करने के लिए इतनी मेहनत करनी पड़ती है कि उसके बदले में मिलने वाली फसल बहुत ही कम होती है। पहाड़ी खेतों में स्त्री-पुरुष बैलों के साथ बैलों की तरह या उससे भी अधिक परिश्रम करते दिखाई देते हैं, कुछ लोग तो शहरों में छोटे-मोटे काम करके मिली हुई पूँजी अपनी खेती में लगा देते हैं लेकिन फिर भी उनकी उपज में कोई अधिक परिवर्तन नहीं होता। इसलिए उपन्यासकार पंकज बिष्ट द्वारा लिखित उपन्यास 'उस चिड़िया का नाम' में हरीश खेमानंद और सुरेश से कहता है–'आपकी अर्थव्यवस्था तो यह है कि आपको अपनी खेती में भी पैसा लगाना पड़ता है, दुनिया में शायद ही कोई और ऐसा धंधा हो जैसी हमारी खेती है जो कुछ देने की जगह लेने लगी है श्रम और पूँजी भी।'[2] आज भी इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी किसानों की आत्महत्याओं का आँकड़ा बढ़ता हुआ दिखाई दे रहा है। पहाड़ी जनजीवन स्तर अत्यंत निम्नकोटि का है। यहाँ मात्र कृषि पर जीवनयापन भी असंभव है। सन् 1975 के कुछ उपन्यासों में ऐसे अभावपूर्ण किसानी जीवन का चरित्र चित्रण हुआ है, जो आज भी विदर्भ और अन्य दिखाई दे रहा है। यह किसानी जीवन कम अधिक मात्रा में ठीक तो है लेकिन आदिम जनजीवन, घुमंतू जीवन आज भी बहुत कठिन स्थितियों से सफर कर रहा है, जिसका रास्ता बिल्कुल ऊबड़-खाबड़ है। आज भी हमारे आजाद देश में इनके साथ न्याय हुआ है ऐसा इनकी स्थिति को देखकर नहीं लगता। इनके जीवन के बारे में बहुत ही कम लिखा गया है। यह लोग साहित्य की चपेट में भले ही न हों लेकिन भूख और अत्याचार की चपेट में निश्चित हैं। ग्लोबलाइजेशन और बढ़ती औद्योगिकता के कारण मूल कलाएँ और व्यवसाय में काफी परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है। इनकी पारंपरिक कलाएँ लुप्त होती देखी जा सकती हैं। घुमंतू किसी एक स्थान पर न रहकर यायावरी जीवनयापन करते हैं। भारत में इनकी संख्या अधिक मात्रा में पाई जाती है। इनमें प्रमुखतः नट, सपेरे, मदारी, बहुरुपिए, ज्योतिष, गाडोलिया, लुहार आदि हैं। यह लोग केवल मौजमस्ती के लिए नहीं घूमते, अपितु अपनी उपजीविका के लिए उन्हें भटकना पड़ता है। उनकी यह व्यवस्था है कि एक ही स्थान पर उन्हें व्यवसाय नहीं मिलता। घुमंतू लोगों में भी दो प्रकार के घुमंतू लोगों को सम्मिलित किया जा सकता है–

निरंतर घुमंतू–निरंतर घुमंतू जनजातियाँ जीविकोपार्जन हेतु हमेशा भटकती रहती हैं। एक ही जगह पर रोजी-रोटी की समस्या हल न होने के कारण उन्हें गाँव गाँव दर-दर भटकना पड़ता है। इन जनजातियों में नट, सपेरे, मदारी, वैद्य, ज्योतिषी, गाडोलिया, लुहार आदि का समावेश होता है जिनका विश्लेषण साहित्य में बहुत ही कम मात्रा में हुआ दिखाई देता है। विशेष रूप से इनके जीवन पर किसी प्रसिद्ध रचना का नाम देखने-पढ़ने में नहीं आता। घुमंतू जनजातियों की आबादी अत्यल्प होने के कारण इन पर सरकार का भी कोई विशेष ध्यान नहीं, क्योंकि सरकार का पूरा

ध्यान वोट बैंक पर ही होता है। 'घुमंतू रोजी-रोटी के लिए निरंतर गाँव-गाँव का भ्रमण करते हैं। वैसे तो इनका अपना कोई एक गाँव नहीं होता है और यदि होता भी है तो चुनाव के समय ये अपने गाँव में उपस्थित नहीं रह पाते। इसीलिए इनकी गंभीर से गंभीर समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित नहीं होता। आज भी गाँव के स्तर पर इन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। गाँव के मुखिया इनके साथ ढंग का व्यवहार नहीं करते। बहुत बार तो इनकी बहू-बेटियों पर गाँव के गुंडों की बुरी नजर होती है। इन सब समस्याओं से बचकर वे रोजी-रोटी के लिए दर-दर भटकते रहते हैं। इसका वर्णन आधुनिक उपन्यासों में हुआ है। जिसमें प्रमुखत: महर ठाकुरों का गाँव, दंड विधान, विकल्प आदि उदाहरण के तौर पर देखे जा सकते हैं। मराठी की प्रसिद्ध कादंबरी 'सत ना गत' राजन खान द्वारा लिखित है। जिसमें गाडोलिया लुहारों का बड़े ही विचित्र ढंग से वर्णन हुआ है। अत्याचारों की शृंखला में जकड़ी हुई घुमंतू स्त्री स्वतंत्रता के 70-75 वर्षों बाद भी पीड़ा, अपमान, अत्याचार की गहरी खाई में दबी पड़ी है। निम्नवर्गीय तथा पिछड़ी जातियों की स्त्रियों का शोषण उच्चवर्गीय स्त्रियों की तुलना में अधिक है। उच्चवर्ग के पुरुषों द्वारा भी निम्न जाति की स्त्रियों का शोषण होता रहा है। गाँव में आई नववधू का शोषण उच्चवर्ग की परंपरा रही है। 'विकल्प' उपन्यास में उच्चवर्गीय रुदल गाँव की हरएक निम्न जाति की लड़की का शोषण करता है–'गाँव की छोकरियों पर शासन है रुदल का, कोई माई का लाल ऐसा नहीं जो अच्छी लौंडिया बेहा लाए और वह रुदल के हाथों से बचाकर रखें।[3] इसी प्रकार 'दंड विधान' उपन्यास में चमार टोली की स्त्रियों का शोषण उच्चवर्ग द्वारा होता है। कभी विधवा का बलात्कार, तो कभी किसी की पत्नी का। इस संदर्भ में लक्ष्मी पंडित कहता है–'कौन नहीं पकड़ता है चमार टोली की औरतें ऐं? सतीश की, राघव की, इंदर की, तुम भंगी-चमार साला किसकी औरत थोड़ी है ऐं?[4] कुछ इसी प्रकार पिछड़ी जनजातियों की स्त्रियों का शोषण सागर की गलियाँ, अल्मा कबूतरी आदि उपन्यासों में भी चित्रित हुआ है।

कुछ उपन्यासकारों द्वारा उपन्यासों में इनकी पीड़ा, उत्पीड़न, अत्याचार, भूख, महामारी आदि का रेखांकन किया गया है, परंतु सरकारी दफ्तरों में आज भी इनके संदर्भ में अजीब उदासीनता दिखाई देती है। क्या स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी सरकारी दफ्तरों में इनका रेखांकन हो सकता है? यह सवाल अपने-आपमें और हम सबके लिए बड़ा ही अजीब है, बड़ा ही शोचनीय है। इसका दूसरा पक्ष यह है कि कम आबादी वाली जनजातियाँ सरकारी नजरों में वोट की तुलना में कोसों दूर हैं। जब तक इनका महा वोट बैंक नहीं होता तब तक यह अलक्षित पीड़ित होती रहेगी। आरक्षण से अधिक यह अलक्षित है। निरंतर घुमंतू लोगों के लिए आवास योजनाएँ होकर भी उसका लाभ उच्चवर्ग ही उठाता है। इस संबंध में कठोर सरकारी नियम बनना आवश्यक है। नगरेत्तर जीवन में आज भी पिछड़ी जनजातियों का सामाजिक स्तर अत्यंत निम्न है, इसमें सुधार लाने की दृष्टि से अध्ययन की आवश्यकता है। तादाद में बड़ी श्रेणी तो अब आरक्षण की माँग पर अड़ी है। बाबासाहब अंबेडकर जी की नजर में जो दो वर्ग थे, जो आज कानून से राज्य और केंद्र में आरक्षण से लाभान्वित हैं, क्या उनको कभी इस सवाल ने हैरान नहीं किया होगा कि घुमंतुओं को भी साथ लेकर चलें? संविधानात्मक सुरक्षा कवच से आच्छादित जनजातियाँ काफी संख्या में प्रगति पर हैं, पर उनकी तुलना में घुमंतू और संख्यात्मक छोटी-छोटी अन्य जनजातियाँ आज भी देश के विविध भागों में अभावों भरा जीवन जी रही हैं। किसानी में काम आनेवाले

 ISSN 0975-735X

विविध औजारों से लेकर युद्ध के काम की तलवारें, भाले, ढाल, तोप, किले के दरवाजे की बड़ी-बड़ी जंजीरों आदि के निर्माता बढ़ती मशीनी सभ्यता के कारण दिन-प्रतिदिन बेकार होते दिखाई दे रहे हैं और जिनकी पहली पीढ़ी पढ़-लिखकर शिक्षित हुई वे सिर्फ पढ़े लिखे हैं अन्य की प्रतियोगिता में उनका नंबर बहुत पीछे है। इस देश की मानसिकता ही यह है कि यहाँ श्रेणी संख्या वाले समूह की शैक्षिक अर्हता सिर्फ अपनी श्रेणी और श्रेणी ही है दूसरा या दूसरी लघु श्रेणी वाले भले ही दृष्टि और ज्ञान से आगे क्यों न हों, इसका कोई लाभ नहीं। किसी भी बड़े और ऊँचे पद को प्राप्त करने के लिए श्रेणी संख्या ही सबसे बड़ी अर्हता है। आपका जन्म यदि अधिक संख्या वाली श्रेणी में होता है तो बहुत बार आप संघर्ष से बच जाते हैं क्योंकि समर्थन के लिए आपके पीछे बहुत बड़ी आबादी वाली श्रेणी तत्काल खड़ी हो जाती है। इस मानसिकता को बदलने के लिए कितना समय लगेगा पता नहीं। हम केवल प्रदर्शनीय आदर्श को महत्त्व देते आ रहे हैं और रही बात मूल्य और आदर्श की, तो यह सब सामान्यजन के लिए ही लागू होते हैं या ऐसा समझिए की यह सब खास उनके लिए ही बनाए गए हैं।

घुमंतू जातियों का प्राथमिक सुविधाओं से कोसों दूर रहना या फिर जानबूझकर उन्हें इस प्रक्रिया से कोसों दूर रखना, यह 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत जैसा है। सुधार की डींगें मारना यह एक फैशन है। बस! इन्हें अपनी कला पर जीने की स्वतंत्रता में बाधा न आए या कोई बाधा न लाए इतनी तो अपेक्षा बनती है।

संदर्भ

1. हिमांशु जोशी, सुराज, भारतीय प्रकाशन संस्थान, 1994 पृ॰ 32
2. पंकज बिष्ट, उस चिड़िया का नाम, राजकमल प्रकाशन, 1986 पृ॰ 114
3. रामदेव शुक्ल, विकल्प ग्रंथ अकादमी, 1988 पृ॰ 9
4. मुद्राराक्षस, दंड विधान, राधा कृष्ण पब्लिकेशन, 1986 पृ॰ 21

मो॰ 9422316617

ईमेल onlyishwar@gmail.com

रवींद्र वर्मा के कथासाहित्य में चित्रित पात्रों की मानसिकता

डॉ॰ जयलक्ष्मी एफ॰ पाटील
सहायक प्राध्यापक
पी॰जी॰ विभाग
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में रवींद्र वर्मा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। हिंदी साहित्य में श्री रवींद्र वर्मा ने अपनी रचनाओं में मानव की यथार्थ विसंगतियों के बारे में लिखा है। वे मनुष्य के भीतर और बाहर के दोनों पहलुओं को चित्रित करने में सफल रहे हैं। इनके साहित्य में समाज में दिखाई देनेवाली समस्याओं का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। मनुष्य की मानसिक परिस्थितियों से जुड़ी भावनाओं को अत्यंत सूक्ष्मता से परिभाषित करने में वर्माजी ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। मनुष्य के जीवन में कई ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं जहाँ पर निर्णय लेने में दुविधा या द्वंद्व की स्थिति होती है। कुछ अंतर्द्वंद्व मनुष्य के भीतर ही लुप्त या छिपी रह जाती है। व्यक्ति के अंतर्मन के द्वंद्व तथा मनोविकारों से ग्रस्त पात्रों के आचरण का सूक्ष्म विश्लेषण रवींद्र जी के साहित्य लेखन का प्रधान लक्ष्य रहा है। मनोवैज्ञानिक विषयों पर आधारित साहित्य का लक्ष्य व्यक्ति का सामान्य चित्र प्रस्तुत करना ही नहीं बल्कि उसकी अनुभूतियों के सतत परिवर्तन और आत्मनिष्ठ संवेगों को परिवेश, परिस्थितियों और घटनाओं के संदर्भ में प्रस्तुत करना होता है, अर्थात मनोवैज्ञानिक कथासाहित्य में पात्रों के माध्यम से मनुष्य की मात्र बाह्य ही नहीं, आत्मनिष्ठ विशेषताओं संवेदनाओं का चित्र भी खींचा जाता है।

रवींद्र वर्मा के कथासाहित्य में चित्रित पात्रों की मानसिकता

1. **दुविधा की स्थिति**–'आखिरी मंजिल' उपन्यास में व्यक्ति के अंतर्मन के द्वंद्व तथा मनोविकारों से ग्रस्त पात्रों के आचरण का सूक्ष्म विश्लेषण रवींद्र जी का प्रधान लक्ष्य रहा है। सही और गलत का फैसला लेने में मनुष्य का मनोबल अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसी मनोबल की कमी के कारण कुछ लोग अंतर्मन में हो रहे संघर्ष के कारण जीवन के पथ पर असंतुष्ट होकर रह जाते हैं–

सूरज अभी तक नहीं निकला? उन्होंने भँवें सिकोड़ीं।
सुनंदा हँसी, 'सूरज डूब रहा है'।[1]

प्रस्तुत उपन्यास में कथानायक माधव जब मृत्यु शैया से उठता है तो उसके मन में अपने आसपास की वस्तुओं को पहचानने में एक द्वंद्व सा दिखाई देता है। उन वस्तुओं के होने या न होने के बारे में ही उसके भीतर दुविधा की स्थिति होती है।

2. **वैयक्तिक निर्णय**–हम अपने आसपास के वातावरण में ऐसे अनगिनत रिश्तों को देख सकते हैं, जो ऐसे लगते हैं जैसे एक पतली डोर की तरह खड़े हों। घटते हुए मानवीय मूल्यों के

 ISSN 0975-735X

कारण ही आज मानवीय संबंध डगमगा रहे हैं। मनुष्य अपने भीतर की वासना, क्रोध, अनैतिकता और लालच के कारण ही सामाजिक अनहोनियों का कारण बना हुआ है। जैसे 'पत्थर ऊपर पानी' में प्रोफेसर चंद्रा के बचपन के दोस्त राधारमण की बेबसी और मन का अंतर्द्वंद्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। राधारमण जो ब्राह्मण था, एक कायस्थ लड़की कुसुम से प्यार करता है और घरवालों के दबाव में आकर विवाह जयमाला से कर लेता है। वह अपने वैयक्तिक निर्णय पर पश्चाताप कर दुखी होता है। कहने का मतलब यह है कि लोग अपने जीवन में न जाने ऐसे कितने निर्णयों पर अंदर-ही-अंदर द्वंद्व की स्थिति का अनुभव करते हैं–'तुमने शहर छोड़ा और कायस्थ होकर ब्राह्मण लड़की से प्रेम विवाह किया।' राधारमण कहता, फिर तुम हारवर्ड तक शोध के लिए चले गए। फिर वह हँसता : मुझे अपने शहर में न अपने मन की औरत मिली, न अपने मन का काम। मैं अपने घर में एक कोल्हू का बैल हूँ।'[2]

3. **मानसिक संतुलन**–मनुष्य के मानसिक असंतुलन का उसकी सेहत पर बुरा असर पड़ता है। 'मैं पेड़ नहीं हूँ' कहानी में साहित्यकार मृत्यु के निकट आने के आभास से ही टूट जाता है। वह कठोर द्वंद्व की स्थिति से गुजरता है–'एकाएक धूप कुछ तेज लगी। शायद यह काफी देर टहलने की वजह से हो। वे लॉन पर ही पेड़ की छाँव में खड़े हो गए। बैठे-बैठे लेट गए और पेड़ के पत्तों के परदे से चमकता आसमान देखने लगे। कोई आदमी केवल सफल होकर कैसे जी सकता है? पेड के लिए फल ही उसका अर्थ है। मेरे लिए नहीं है, उन्होंने सोचा। वे बुदबुदाए, 'मैं पेड़ नहीं हूँ'।[3]

4. **जूनून**–आज डॉ॰ सक्सेना के पारिवारिक दु:ख में राधा शामिल हो गई, जब कपिल आउट हुआ और इंडिया आहिस्ता-आहिस्ता 'वर्ल्ड कप' के सेमी फाइनल में हार गई। डॉक्टर सोफे पर कब बैठे-बैठे लेट गए, उन्हें पता नहीं चला। जब रवि शास्त्री ने गेंद उछाली और गेंद मैदान से बाहर जाने के बजाए आसमान में चली गई, फिर लपकी गई, तभी डॉ॰ सक्सेना ने आँखें मूँद लीं, जैसे राजा दशरथ ने राम को वन-गमन की आज्ञा दे दी हो। डॉ॰ सक्सेना की ऐसी स्थिति देखकर राधा घबरा गई–

बीवी, जी क्या हुआ? उसने पूछा

इंडिया हार गई, गीता की आवाज और आँखें गीली थीं।

इंडिया हार गई, बीवी जी!

राधा रो रही थी।[4]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि डॉक्टर को क्रिकेट मैच का इतना जुनून था। वे यह मानते थे कि अगर उनकी पत्नी सोफे से उठती है, तो भारतीय बल्लेबाज आउट हो जाते हैं, इस प्रकार लोगों की मनस्थिति होती है।

5. **असफल भावना**–'नैनीताल' कहानी में मध्यवर्गीय लोगों के टूटते सपनों के यथार्थ को दिखाया गया है। अमीरी और गरीबी के बीच का अंतर इस प्रकार लोगों के जीवन से खेल रचता है, जैसे–

जब हम नैनीताल के लिए चिंतित थे, सुनीता ने एक सुबह पूछा–'बताइए, मध्यवर्गीय आदमी की परिभाषा क्या है?'

मैंने कहा–'मध्यवर्गीय आदमी वह होता है जो नैनीताल के सपने देखता है।'

'क्यों सपने तो कोई भी देख सकता है?'

'नहीं कोई भी कोई सपना नहीं देख सकता। सपनों में भी वर्गों की बातें होती हैं, जो आदमी आज दोपहर दिल्ली में लू से मरेगा, वह भी रोटी, ठंडे पानी और छाया का सपना देख रहा होगा, कुछ लोग आज दिल्ली से नैनीताल जाएँगे, वे नैनीताल का सपना नहीं देखेंगे, नैनीताल देखेंगे। सपना हम-तुम देखेंगे।[5] प्रस्तुत कहानी में सामान्य वर्ग के व्यक्ति की असफल भावनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

6. **द्वंद्वात्मक परिस्थिति**–'पानी' नामक कहानी में गरीबों की द्वंद्वात्मक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है, जैसे–

यह बस्ती रईसों की थी। कमी पैसे की नहीं थी–पानी की कमी थी।

रईसों ने पानी पर डाका डाला। पहले वे पानी के नल को कोठी के तहखाने में ले गए, फिर उसे सदा के लिए वहीं छुपा दिया, जैसे पानी पानी न हो, हीरे-जवाहरात हों जिन्हें बैंक के लॉकर में छिपा दिया हो। वे फिर तहखाने से चुपचाप यानी कोठी में इस तरह चौबीस घंटे पानी था, कोठी में साबुन की चिनचिनाहट और खाली गिलास था।'[6]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि आर्थिक द्वंद्व या द्वंद्वात्मक परिस्थिति से गरीब गुजर रहा है। उसको जीने के लिए पानी जुटाना भी मुश्किल है। जीवन का मूलाधार पानी जैसे रईसों के लिए ही हो।

7. **जीवन के प्रति निराशा**–कहानी 'मृत्युपूर्व बयान' में कहानीकार ने दर्शाया है कि आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण व्यक्ति इतना निराशावादी हो जाता है कि परिवार सहित मौत को गले लगाना चाहता है–

मैं फिर चीखा–शर्म नहीं आती आपको?

मैंनेजर चीखा–आउट, आउट!

मैं जानता हूँ कि मेरी नौकरी चली गई है। मैं यह खबर बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने यह फैसला किया है। पहले मेरा विचार था कि चुपचाप रात के खाने में जहर मिला दूँ सब लोग एक साथ दुनिया छोड़ दें। फिर मैंने सोचा कि मुझे अम्मा, पत्नी और चारों बच्चों को मारने का कोई हक नहीं क्योंकि उनका इस धरती पर उतना ही हक है जितना किसी प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति तानाशाह का। क्या उन्हें हक मिलेगा? ओ॰के॰ टाटा।'[7]

अत्यंत निराशावादी मनोधारणा इन संवादों में है। यह सब व्यक्ति के कमजोर मनोबल को दर्शाता है।

निष्कर्ष

द्वंद्वात्मक परिस्थितियों ने आधुनिक समाज में हरेक व्यक्ति का शिकार किया है। इनमें पाए जानेवाली मानसिक विसंगतियों को विश्लेषित करने का प्रयास रवींद्र वर्मा के साहित्य की देन है। खुद के भीतर अपनी न्यूनताओं को देखकर, मनुष्य को उन्हें सुधारने का प्रयास करना चाहिए। मनुष्य आत्मविश्वास से मानसिक दुर्बलताओं को पार करके जी सकता है। रवींद्र वर्मा ने इसके लिए एक सुदृढ़ मनोबल की आवश्यकता को अनुभव किया है। रवींद्र वर्मा का मुख्य धरातल मनोविज्ञान है। उन्होंने मनुष्य के रूढ़िगत सामाजिक, राजनीतिक विडंबनाओं का शिकार बनने और मनुष्य में छिपे दु:ख तथा द्वंद्व का यथार्थ चित्रण अत्यंत सहजता से किया है। इनके साहित्य में

 ISSN 0975-735X

आधुनिक जगत की वैयक्तिक सामाजिक दुविधाओं, द्वंद्वात्मक घटनाओं व पात्रों की मानसिक स्थिति को इतने स्वाभाविक ढंग से उभारा है कि पाठकों को सर्वसामान्य मनुष्य की जीवन शैली मन:स्थिति का आईना ही लगता है।

संदर्भ

1. रवींद्र वर्मा, आखिरी मंजिल, पृ॰ 9
2. रवींद्र वर्मा, पत्थर ऊपर पानी, पृ॰ 41
3. रवींद्र वर्मा, मैं पेड़ नहीं हूँ, पृ॰ 82
4. रवींद्र वर्मा, इंडिया हार गई, पृ॰ 93
5. रवींद्र वर्मा, नैनीताल, पृ॰ 45
6. रवींद्र वर्मा, पानी की कहानी, पृ॰ 19
7. रवींद्र वर्मा, मृत्यु पूर्व बयान, पृ॰ 113

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की समीक्षा दृष्टि

जितेन्द्रकुमार सिंह, शोधछात्र, हिंदी विभाग
डॉ॰ मृदुल जोशी
एसो॰प्रो॰, हिंदी विभाग
गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार

आलोचना उन विधाओं में से है, जो पश्चिमी साहित्य की नकल पर नहीं, बल्कि अपने साहित्य को समझने-बूझने और उसके महत्त्व पर चिंतन करने की आवश्यकता को लेकर जन्मी। हिंदी आलोचना का प्रारंभ गद्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ भारतेंदु युग (आधुनिककाल) से माना जाता है, लेकिन इस काल के समीक्षकों का ध्यान काव्य के अत्यंत वाह्य और स्थूल रूप पर ही रहा। काव्य के भीतरी भाव-जगत में प्रविष्ट होकर उन्होंने विश्लेषण नहीं किया, मगर इतना जरूर है कि नई समीक्षा के भावी विकास का पूर्वाभास इस काल में मिलने लगा था। आगे द्विवेदीयुग में हिंदी आलोचना को नया और विस्तृत स्वरूप प्राप्त हुआ, लेकिन हिंदी आलोचना का वास्तविक रूप शुक्ल युग में दिखाई पड़ा। जिसका श्रेय इस युग के प्रमुख आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल को दिया जाता है। इस युग से पूर्व गुण-दोष, निर्णय और तुलना जैसे स्थूल तत्त्वों को महत्त्व दिया जाता था, लेकिन शुक्ल जी ने अपनी समीक्षा पद्धति में विश्लेषण, विवेचन और निगमन जैसे तत्त्वों को स्थान दिया, जिसमें समीक्षक की सजगता का तत्त्व विद्यमान था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई॰ में बस्ती जिले के अगोना नामक ग्राम में हुआ था। इनकी माता का नाम 'निवासी' और पिता पं॰ चंद्रवली शुक्ल था। पिता की नियुक्ति सदर कानूनगो के पद पर मिर्जापुर में हुई इसलिए पूरा परिवार आकर यहीं रहने लगा। अल्पायु में ही इनकी माता का देहांत हो गया और विषम परिस्थितियों ने इन्हें अल्पायु में ही परिपक्व कर दिया था। अध्ययन के प्रति शुक्ल जी लगन बाल्यावस्था से ही थी लेकिन इसके लिए इन्हें अनुकूल वातावरण नहीं मिलता था। प्रारंभिक शिक्षा वहीं हुई। इनके पिता चाहते थे कि ये कचहरी में जाकर दफ्तर का काम सीखें लेकिन शुक्ल जी का मन उच्चशिक्षा प्राप्त करने का था। वकालत के लिए इनको इलाहाबाद भेजा गया, मगर उसमें इनकी रुचि नहीं हुई और इनका झुकाव साहित्य की ओर बढ़ने लगा। परिणामस्वरूप 1903 से 1908 तक 'आनंद कादंबिनी' के सहायक संपादक का कार्य किया। इसी समय से उनके वैचारिक लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे और उनकी प्रसिद्धि बढ़ती गई। उनसे प्रभावित होकर 1908 में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने उन्हें 'हिंदी शब्द सागर' के सहायक संपादक की जिम्मेदारी सौंपी, जिसे शुक्ल जी ने सफलतापूर्वक पूरा किया। वे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के संपादक भी रहे। सन् 1919 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के हिंदी विभाग में प्राध्यापक हुए और 1941 ई॰ तक विभागाध्यक्ष के पद को सँभाला। 2 फरवरी, 1941 ई॰ को हृदयगति रुक जाने से शुक्लजी का निधन हो गया। इस बीच शुक्लजी ने हिंदी साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण रचनाओं का निर्माण कर साहित्य की श्रीवृद्धि में अमूल्य योगदान

 ISSN 0975-735X

दिया। इनकी प्रमुख कृतियाँ तीन प्रकार की हैं–

1. आलोचनात्मक ग्रंथ–सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास और जायसी पर की गई आलोचनाएँ, काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद, रसमीमांसा आदि।
2. निबंधात्मक ग्रंथ–उनके निबंध चिंतामणि नामक ग्रंथ में संकलित हैं जो दो भागों में है।
3. इतिहास ग्रंथ–'हिंदी साहित्य का इतिहास' यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण कृति है।

अनुवादित कृतियों में 'शशांक' उनका बंगला से अनुवादित उपन्यास है और विश्वप्रपंच, आदर्श जीवन, मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन, कल्पना का आनंद अँग्रेजी का अनुवाद है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा अनेक ग्रंथों का संपादन किया गया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी समीक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने हिंदी आलोचना के मानदंड को निर्धारित किया और रचनाओं का नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन करते हुए उसे समाज के लिए उपयोगी बताया और उसे लोकमंगल से जोड़ा। शुक्लजी की समीक्षा-दृष्टि को समझने के लिए उनकी आलोचना को सैद्धांतिक व व्यावहारिक दृष्टि से दो भागों में देख सकते हैं–

सैद्धांतिक दृष्टि

कविता क्या है, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद आदि निबंधों में इनकी सैद्धांतिक समीक्षा का रूप देखने को मिलता है। आलोचना के साथ-साथ अन्वेषण और गवेषणा करने की प्रवृत्ति भी इनमें खूब मिलती है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' इस प्रवृत्ति का परिणाम है। इतिहास लेखन में शुक्लजी ने साहित्य की प्रवृत्तियों को जनता की चित्तवृत्ति के साथ जोड़ा है–'प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।'[1] अर्थात् साहित्य में वही दिखाया जाता है, जो उस समय समाज में घटित महत्त्वपूर्ण घटनाएँ व जनता की चित्तवृत्ति होती है। अत: किसी भी काल की जनता की चित्तवृत्ति का पता करना हो तो उस काल के साहित्य से उसे आसानी से समझा जा सकता है। इस प्रकार शुक्लजी की समीक्षा-दृष्टि सूक्ष्म, तार्किक, विश्लेषणात्मक व निगमनात्मक विधि पर आधारित है। वे रसवादी, लोकमंगलवादी जैसे उच्चादर्शों को साहित्य में स्थान देते हैं। वे अपने साहित्य में भाव को विशेष महत्त्व देते हैं, क्योंकि भाव के बिना कविता संभव नहीं। 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' निबंध में लोकमंगलकारी भावना पर प्रकाश डालते हुए शुक्लजी कहते हैं–'सत्, चित्, आनंद और ब्रह्म के उन तीनों स्वरूपों में से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनंद' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनंद की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाएँगी–साधनावस्था और सिद्धावस्था। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म को 'आनंद' स्वरूप का सतत् आभास नहीं रहता, उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है।'[2] अर्थात् काव्य के रसास्वादन का लक्ष्य आनंद ही है और कविता के द्वारा मनुष्य हृदय की मुक्ति की साधना करता है। कविता को परिभाषित करते हुए शुक्लजी कहते हैं कि 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती

आई है। उसे कविता कहते हैं।'[3] यानी कविता का लक्ष्य मनुष्य को व्यष्टि से समष्टि में लीन कर देना है। यह लीनावस्था उसको जीवन और जगत से अलग नहीं करती, बल्कि वह नाना रूपात्मक जगत के साथ रागात्मक संबंधों को मजबूती प्रदान करती है।

शुक्लजी की सैद्धांतिक मान्यताएँ चिंतामणि के निबंधों में समाई हुई हैं। उनसे ही उन्होंने सैद्धांतिक समीक्षा के प्रतिमान निश्चित किए हैं। जिन्हें कविता क्या है, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और काव्य में व्यक्ति-वैचित्रवाद, रसात्मकबोध के विविध स्वरूप आदि निबंधों द्वारा देखा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक निबंधों में करुणा, श्रद्धा, लज्जा, ग्लानि, क्रोध, लोभ और प्रीति आदि भावों तथा मनोविकारों पर लिखे गए निबंध आते हैं। शुक्लजी के ये निबंध सर्वथा मौलिक हैं। इस तरह किसी अन्य लेखक का इस विषय पर इतना परिपक्व विचार नहीं मिलता। शुक्लजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि निबंध लिखते समय इनकी बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वित रूप दिखाई देता है, चिंतामणि की भूमिका में वे कहते हैं–'इस पुस्तक में मेरी अंतर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही बुद्धि पर हृदय को साथ लेकर। अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँचती है, वहाँ हृदय थोड़ा-बहुत रमता अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया है।'[4] अर्थात् जहाँ बुद्धि की आवश्यकता हुई वहाँ चिंतन की प्रधानता है और जहाँ हृदय की आवश्यकता हुई वहाँ हृदय पक्ष की प्रधानता है। इस तरह दोनों का अद्‌भुत साम्य इनकी रचनाओं में देखने को मिलता है, जो रचना को पाठक के हृदय से जोड़ देती है। अत: इनके निबंधों में सैद्धांतिक पक्ष के दर्शन होते हैं।

व्यावहारिक समीक्षा

शुक्लजी ने समीक्षा सिद्धांत साहित्यिक रचनाओं के आधार पर स्थापित किए हैं। उनकी सैद्धांतिक और व्यावहारिक समीक्षा में संगति है। वे जहाँ सिद्धांत प्रतिपादन में प्रवृत्त होते हैं वहीं पर्याप्त उदाहरण देकर अपने कथन को प्रमाणित भी करते हैं। उनके सिद्धांत ऊपर से थोपे हुए नहीं लगते, बल्कि साहित्य की आवश्यकता के माध्यम से दिए हुए लगते हैं। व्यावहारिक आलोचना उनके ग्रंथ गोस्वामी तुलसीदास, हिंदी साहित्य का इतिहास, जायसी ग्रंथावली एवं भ्रमरगीत सार में स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी समस्त व्यावहारिक आलोचनाओं को मुख्यत: दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–(क) कवियों पर लिखी गई समीक्षाएँ, (ख) काव्यधाराओं पर लिखी गई समीक्षाएँ

शुक्लजी ने अपने समय के श्रेष्ठ कवियों पर अपनी व्यावहारिक समीक्षा प्रस्तुत की। तुलसी उनके प्रिय कवि और 'रामचरितमानस' उनका प्रिय ग्रंथ है। तुलसीदास ही एक ऐसे कवि हैं, जिनके काव्य में किसी का विरोध नहीं है। लोकजीवन के सभी पक्षों में समन्वय स्थापित किया गया है। शुक्लजी तुलसीदास के इसी गुण की सराहना करते हुए कहते हैं–'गोस्वामीजी की भक्ति-पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उनका नित्यलक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उनमें समन्वय है, पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।'[5] अर्थात् जिस प्रकार उन्होंने लोकधर्म और भक्तिधर्म को एक करके दिखाया, उसी तरह कर्म, ज्ञान और उपासना के बीच भी सामंजस्य स्थापित किया और भक्ति की चरम सीमा पर पहुँचकर भी लोकपक्ष उन्होंने नहीं छोड़ा। शुक्लजी के शब्दों में–

 ISSN 0975-735X